



# अमृत विचार रंगोली

## डिजिटल और ग्लोबल हुआ लोक गीत-संगीत



### विरासत की लहरियों को नए आयाम दे रहे हैं

पञ्च अनूप रंजन पांडे का लोकप्रिय बस्तर बैड आदिवासी कलाकारों का ऐसा समूह है, जिसने पारंपरिक गीत-संगीत और नृत्य को विदेशों तक पहुंचाया है। अपनी अनूठी स्वर लहरियों के साथ यह बैड अलग छाप छोड़ता है। हालांकि बस्तर बैड का कहना है कि वह अपनी मिट्टी से जुड़ा है और उसने लोक कलाओं में न तो कोई संशोधन किया है और न ही आधुनिकता का तड़का लगाया है। इसी तरह सादिक, असिन और जाकिर का साज बैड राजस्थानी गीत-संगीत की परंपरा को नए आयाम देने के साथ अपनी विरासत को संरक्षित कर रहा है। ऐसे ही लुप्त होती पारंपरिक संगीत संस्कृति को संरक्षित करने के लिए ओडिशा ने पहला लोक संगीत बैड 'आदि धुन' बनाया है।

### पंजाब में 'फोक टर्बेनेट्स' मेलों में जमा रहे नया रंग

पंजाब की लोक गायकी को भी वहां के युवाओं ने नए रंग भरकर फिर से जिंदा कर दिया है। पारंपरिक परिधानों में युवाओं की टोलियां आज वहां मेलों और पर्वों के मौके पर लोक गीतों को नए स्वर देती नजर आती हैं, जिसे सुनने के लिए बड़ी संख्या में लोग जुटते हैं। ऐसे युवाओं के म्यूजिक ग्रुप 'फोक टर्बेनेट्स' के नाम से जाने जाते हैं। लाइव शो करने के साथ मेलों और प्रदर्शनियों में गाना-बजाना अब लोक संस्कृति की पहचान बन चुका है।



भले ही आज की युवा पीढ़ी के बड़े हिस्से को लोक गीत और संगीत उबाऊ, बेमानी और उसके प्रशंसक दिखावटी लगते हों, लेकिन यह भी सच है कि युवाओं की ही तमाम टोलियां लोक गीत-संगीत को सांस्कृतिक धरोहर मानकर आधुनिकता का नया आयाम देने में जुटी हैं। उनके इन प्रयास से पारंपरिक धुनें, डिजिटल तकनीक और फ्यूजन के साथ मिलकर नए-नए रूप में सामने आ रही हैं। गिटार, ड्रम तथा सिंथेसाइजर जैसे वाद्ययंत्रों का इस्तेमाल करके युवाओं की यह कोशिश देशज गीत-संगीत को क्षेत्रीय संस्कृति से आगे बढ़ाकर वैश्विक मंच प्रदान कर रही है। -मनोज त्रिपाठी, कानपुर

### अनोखी परंपरा



### दाया प्रथा: बिना शादी के दांपत्य जीवन की शुरुआत

दुनियाभर में अनेक ऐसी परंपराएं देखने को मिलती हैं, जिनके बारे में जानकर आश्चर्य होता है। भारत अपनी विविध संस्कृति और परंपराओं के कारण विशेष पहचान रखता है। यहां अलग-अलग क्षेत्रों और समुदायों में जीवन के अपने-अपने नियम और सामाजिक व्यवस्थाएं विकसित हुई हैं। ऐसी ही एक अनोखी परंपरा राजस्थान के उदयपुर, सिरौली और पाली जिलों में रहने वाली गिरासिया जनजाति में देखने को मिलती है।

गिरासिया समाज अपनी विशिष्ट सामाजिक परंपराओं के लिए जाना जाता है। इस समुदाय में दांपत्य जीवन की शुरुआत एक अनोखे तरीके से होती है, जो आधुनिक समय में प्रचलित 'लिव-इन रिलेशन' की तरह दिखाई देती है। सामान्य भारतीय समाज में जहां विवाह को दांपत्य जीवन की अनिवार्य शर्त माना जाता है, वहीं गिरासिया समाज में युवक और युवती पहले साथ रहने लगते हैं और बाद में आवश्यकता या इच्छा के अनुसार विवाह करते हैं।

इस परंपरा की शुरुआत 'दाया प्रथा' से होती है। जब किसी युवक और युवती के बीच आपसी सहमति बन जाती है, तो लड़के पक्ष की ओर से लड़की के परिचार को सामाजिक मान्यता के रूप में कुछ धनराशि दी जाती है। यह राशि पंचायत और समाज की सहमति से तय होती है। इसके बाद दोनों बिना औपचारिक विवाह के ही पति-पत्नी की तरह साथ रहने लगते हैं। समाज भी इस संबंध को स्वीकार करता है और उन्हें परिवार के रूप में मान्यता देता है।

इस व्यवस्था में एक और विशेष बात यह है कि दंपति पर तुरंत विवाह करने का कोई दबाव नहीं होता। कई बार ऐसा भी होता है कि युवक-युवती वर्षों तक साथ रहते हैं और जब उनके बच्चे हो जाते हैं या उन्हें उचित लगता है, तब ही पारंपरिक रीति-रिवाजों के अनुसार विवाह कर लेते हैं।

गिरासिया समाज में इस परंपरा के पीछे एक पुरानी लोककथा भी सुनाई जाती है। कहा जाता है कि बहुत समय पहले इस समाज के चार भाई अलग-अलग स्थानों पर जाकर बस गए थे। उनमें से तीन भाइयों ने विवाह किया, जबकि चौथा भाई बिना विवाह के ही अपनी साथी के साथ रहने लगा। संयोग से विवाह करने वाले तीनों भाइयों की कोई संतान नहीं हुई, जबकि चौथे भाई के वंश से ही परिवार और समाज आगे बढ़ा। इस घटना के बाद से यह मान्यता बन गई कि साथ रहकर संबंधों की सच्चाई और सामंजस्य को समझना भी जरूरी है। हालांकि इस परंपरा में कुछ सामाजिक नियम भी हैं। यदि युवक और युवती लंबे समय तक साथ रहने के बावजूद संतान प्राप्त नहीं कर पाते, तो वे आपसी सहमति से अलग हो सकते हैं। इसके बाद दोनों किसी अन्य साथी के साथ नया संबंध बना सकते हैं और परिवार बसाने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार गिरासिया समाज की यह परंपरा भारतीय समाज की विविधता को दर्शाती है, जहां हर समुदाय ने अपनी परिस्थितियों और अनुभवों के आधार पर अलग-अलग सामाजिक व्यवस्थाएं विकसित की हैं।

### नवाचार के मिलन की प्रक्रिया

लोक गीत-संगीत किसी भी क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान में विशिष्ट भूमिका निभाते हैं। वास्तव में यह उस इलाके में रहने वाले आम लोगों के रीति-रिवाजों, परंपराओं और दैनिक जीवन की कहानियों को भावनाओं और संवेदनाओं के सुरों में पिरोकर अप्रतिम झंकी प्रस्तुत करते हैं। इस तरह समय के साथ अधिकतर लोकगीत युद्ध, समुदाय, रीति-रिवाज, परंपरा, संस्कार और अनुष्ठान की पिछली घटनाओं के न सिर्फ साक्ष्य जैसे हैं, बल्कि उस क्षेत्र की जलवायु, भौगोलिक स्वरूप, लोगों के मिजाज, बोली और रहन-सहन जैसे पहलुओं को समझने का दस्तावेज भी हैं। वर्तमान में भारत का लोक संगीत समय के बदलाव के साथ लोक गीत और नवाचार के मिलन की प्रक्रिया से गुजर रहा है। इसमें पारंपरिक लोक संगीत को आधुनिकता, तकनीक और नए वाद्ययंत्रों जैसे गिटार, सिंथेसाइजर के साथ जोड़कर प्रस्तुत करने के प्रयोग देखे जा रहे हैं। इस मिश्रण ने लोक परंपराओं को युवा पीढ़ी से जोड़ने के साथ सुफिकाना लोक रॉक जैसे नए रूपों को विकसित किया है।

### पारंपरिक लोक धुनों की नई विधा रॉक या इलेक्ट्रो

पारंपरिक लोक धुनों को आधुनिक वाद्ययंत्रों और रॉक, पॉप या जैज जैसी पश्चिमी शैलियों के साथ मिलाकर 'फोल्क-रॉक' या 'इलेक्ट्रो-फोल्क' जैसी नई विधाएं तैयार की जा रही हैं। उदाहरण के लिए सूफी फोल्क रॉक भारत और पाकिस्तान में काफी लोकप्रिय हुआ है। बोलीवुड ने भी तमाम पारंपरिक लोक गीतों को आधुनिक संगीत व्यवस्था के साथ पेश करके लोकप्रियता का नए शिखर पर पहुंचाया है। 'धुमर' या 'नगाड़ा के साथ डोल' जैसे प्रयोग इसी का उदाहरण हैं। यही नहीं, तकनीक के माध्यम से लोक गीतों को रिकॉर्ड कर आर्काइव किया जा रहा है और सोशल मीडिया एवं स्ट्रीमिंग प्लेटफॉर्म के जरिए तेजी से युवाओं तक पहुंचाया जा रहा है।

### राजस्थानी लोक संगीत में बढ़ी फ्यूजन और बॉलीवुड की धमक

लोक गीत और नवाचार के माध्यम से परंपरा की जड़ों को आधुनिकता के साथ जोड़कर किस तरह नया स्वरूप प्रदान किया जा रहा है, इसकी एक झलक राजस्थान के संगीत में देखी जा सकती है, जो अपनी विशिष्ट विशेषताओं के कारण निरंतर ऊंचाइयों की ओर अग्रसर तो है, लेकिन उसने आधुनिकता के लिए दरवाजे भी खोल रखे हैं। संगीतकारों के डिजिटल प्लेटफॉर्म, पारंपरिक संगीत के फ्यूजन और बॉलीवुड में हुए प्रयोग इसी बात की पुष्टि करते नजर आते हैं। वहां तमाम लोक कलाकारों ने अपने पारंपरिक संगीत को फ्यूजन और बॉलीवुड की शैली में ढालकर नए दर्शकों तक पहुंचाया है। इससे न केवल संगीत की लोकप्रियता बढ़ी है, बल्कि युवा वर्ग में इसे लेकर रुचि भी जगी है। इस तरह वैश्विक संस्कृति से संपर्क, उन्नत तकनीक और लोगों की पसंद में आ रहे बदलाव से राजस्थान का संगीत धीरे-धीरे परिवर्तन की सीढ़ियां चढ़ रहा है।

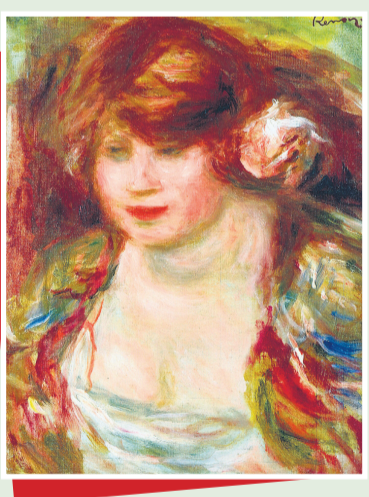
### गांवों की चौपालों तक सीमित नहीं रहे लोक गीत

देशज गीत-संगीत की एक झलक इस बार फागुन में नजर आई, जिसमें होली के मौके पर गाए जाने वाले फाग गीतों को नए अंदाज में पेश करके युवा टोलियों ने लोक संस्कृति को बड़े शहरों में जीवंत कर दिया। पारंपरिक डोल-मंजीरे की जगह उन्होंने फास्ट बीट और फ्यूजन म्यूजिक का इस्तेमाल किया। उनकी इस कोशिश ने यह साबित कर दिखाया कि लोक संगीत सांस्कृतिक धरोहर होने के साथ ही गंगा उस धारा की तरह है, जो समय, समाज और सभ्यता के हर परिवर्तन को अपने भीतर समेटते हुए निरंतर गतिशील है। ऐसे प्रयासों से लोक गीत अब गांवों की चौखट या चौपाल तक सीमित नहीं रहे हैं। गायन मंडलियां और आधुनिक बैड नई शैलियों का निर्माण करके इन्हें डिजिटल और ग्लोबल मंचों तक पहुंचाने में जुटी हैं, जो नई पीढ़ी को खासा पसंद आ रहा है।

### आर्ट गैलरी

## पियरे-अगस्त रेनॉयर की पेंटिंग 'वोमेन वेयरिंग ए रोज एंड्री'

यह कलाकृति, प्रसिद्ध इंप्रेशनिस्ट चित्रकार पियरे-अगस्त रेनॉयर ने 1919 में बनाई थी। यह कैनवस पर तैल रंगों से बना एक चित्र है, जो इंप्रेशनिस्ट आंदोलन की विशिष्ट तकनीकों और सौंदर्यशास्त्र को दर्शाता है। वर्तमान में, यह पेंटिंग एक निजी संग्रह में रखी हुई है। यह कलाकृति एक महिला का जीवंत और अंतरंग चित्रण है, उसके रंग-रूप को गैम और चमकदार रंगों के मिश्रण से उकेरा गया है, जो इंप्रेशनिज्म की खासियत-को बखूबी पकड़ता है। उसकी नजर थोड़ी हटकर है, जो आत्म-चिंतन के एक गहन क्षण को दर्शाती है। उसके बालों में एक गुलाब सजा है, जिसे बड़ी कलात्मकता से लगाया गया है। ब्रश स्ट्रोक डीला और अभिव्यंजक हैं, जिससे रंग सीधे कैनवस पर ही आपस में घुल-मिल जाते हैं।



प्रकाश और छाया के मिश्रण

पियरे-अगस्त रेनॉयर एक फ्रांसीसी चित्रकार थे, जिनका जन्म 25 फरवरी, 1841 को लिमोजेस, फ्रांस में हुआ था। तीन दिसंबर, 1919 को 78 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। पियरे का बचपन गरीबी में बीता, लेकिन उनमें चित्रकला की प्रतिभा बचपन से ही दिखाई देने लगी थी। पेरिस के एक कला विद्यालय में दाखिला लेने से पहले, उन्होंने चीनी-मिट्टी (porcelain) पर चित्रकारी करने वाले आर्टिस्ट के रूप में काम करना शुरू किया। वहीं उनकी मुलाकात अन्य कलाकारों से हुई, जो आगे चलकर इंप्रेशनिस्ट आंदोलन का हिस्सा बने। जैसे-क्लाउड मोनेट और एडगर डेगास।

प्रकाश और छाया के मिश्रण को बखूबी पकड़ता है। उसकी नजर थोड़ी हटकर है, जो आत्म-चिंतन के एक गहन क्षण को दर्शाती है। उसके बालों में एक गुलाब सजा है, जिसे बड़ी कलात्मकता से लगाया गया है। ब्रश स्ट्रोक डीला और अभिव्यंजक हैं, जिससे रंग सीधे कैनवस पर ही आपस में घुल-मिल जाते हैं।

### पियरे के बारे में

पियरे-अगस्त रेनॉयर एक फ्रांसीसी चित्रकार थे, जिनका जन्म 25 फरवरी, 1841 को लिमोजेस, फ्रांस में हुआ था। तीन दिसंबर, 1919 को 78 वर्ष की आयु में उनका निधन हो गया। पियरे का बचपन गरीबी में बीता, लेकिन उनमें चित्रकला की प्रतिभा बचपन से ही दिखाई देने लगी थी। पेरिस के एक कला विद्यालय में दाखिला लेने से पहले, उन्होंने चीनी-मिट्टी (porcelain) पर चित्रकारी करने वाले आर्टिस्ट के रूप में काम करना शुरू किया। वहीं उनकी मुलाकात अन्य कलाकारों से हुई, जो आगे चलकर इंप्रेशनिस्ट आंदोलन का हिस्सा बने। जैसे-क्लाउड मोनेट और एडगर डेगास।

### लोकायन

झारखंड और उसके आसपास के क्षेत्रों में मनाया जाने वाला सरहुल पर्व आदिवासी समाज के सबसे महत्वपूर्ण और पवित्र त्योहारों में से एक है। यह पर्व केवल एक उत्सव नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति गहरी आस्था और कृतज्ञता का प्रतीक माना जाता है। सरहुल के माध्यम से आदिवासी समुदाय प्रकृति, पृथ्वी और सूर्य के प्रति अपना सम्मान व्यक्त करते हैं। इस अवसर पर साल वृक्ष की पूजा, पारंपरिक गीत-नृत्य और सामूहिक भोज का विशेष महत्व होता है।

एक प्रचलित कहावत है 'सावन के अंधे को हरा ही हरा दिखता है'। स्पष्ट है यह कहावत दृष्टिबाधितों द्वारा रंगों की समझ और अनुभूति पर प्रश्नचिन्ह लगाता है। दूसरी तरफ विज्ञान उन चुनौतियों को भी स्वीकारता चला आ रहा है, जिसे सामान्य व्यक्ति लगभग असंभव मान लेते हैं। ऐसे में खबर है कि एम्स्टर्डम स्थित वान गॉग म्यूजियम ने कला को अधिक समावेशी बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल की है। इसके तहत यह संग्रहालय अब दृष्टिहीन और कम दृष्टि वाले दर्शकों को भी महान डच चित्रकार विन्सेंट वान गॉग की कलाकृतियों की अनुभूति का मार्ग प्रशस्त कर रहा है। आमतौर पर चित्रकला को देखने की कला माना जाता है, इसलिए दृष्टिबाधित लोगों के लिए इसे समझना या अनुभूत करना कठिन माना जाता है। ऐसे में एम्स्टर्डम स्थित इस संग्रहालय ने कई अभिनव उपायों के माध्यम से इस चुनौती को अवसर में बदल दिया है।



सुमन कुमार सिंह कलाकार/कला लेखक

## साल के फूलों संग खिलता सरहुल का उल्लास

झारखंड के उरांव, मुंडा तथा अन्य आदिवासी समुदाय इस पर्व को बड़े उत्साह और श्रद्धा के साथ मनाते हैं, जिससे गांवों में आनंद और उत्सव का वातावरण बन जाता है। 'सरहुल' शब्द की उत्पत्ति भी प्रकृति से ही जुड़ी है। यह दो शब्दों- 'सर' या 'सराय' और 'हुल' से मिलकर बना है। 'सर' या 'सराय' का अर्थ साल का पेड़ (शोरिया रोबस्टा) होता है, जबकि 'हुल' का मतलब होता है सामूहिक उत्सव या आनंद का अवसर। इस प्रकार सरहुल का अर्थ है साल वृक्ष के माध्यम से प्रकृति का सामूहिक उत्सव मनाना। लोकमान्यताओं के अनुसार यह पर्व पृथ्वी और सूर्य के प्रतीकात्मक विवाह का भी संकेत देता है। इसी कारण इस दिन लोग सरना स्थल या पवित्र वृक्ष के नीचे पूजा-अर्चना करते हुए प्रकृति से सुख, शांति और समृद्धि की कामना करते हैं। सरहुल पर्व अलग-अलग जनजातीय समुदायों में अलग नामों से भी जाना जाता है। उरांव सरना समाज में इसे 'खदी' या 'खेखेल बेंजा' कहा जाता है। हालांकि विभिन्न समुदायों में



इसकी परंपराओं और अनुष्ठानों में थोड़ी भिन्नता दिखाई देती है, लेकिन प्रकृति की पूजा और सामूहिक उत्सव इसकी मूल भावना बनी रहती है। इस पर्व की तैयारियां लगभग एक सप्ताह पहले से ही शुरू हो जाती हैं। गांव के पाहन यानी पुजारी इस अवसर से पहले उपवास रखते हैं। पर्व के दिन सुबह

सूर्योदय से पहले दो नए घड़ों में पवित्र जल भरकर सरना स्थल पर अर्पित किया जाता है। इसके बाद साल के वृक्ष की पूजा की जाती है और गांव की खुशहाली के लिए प्रार्थना की जाती है। इस पूजा में मां सरना, सूर्य देवता, ग्राम देवताओं और पूर्वजों को स्मरण किया जाता है। पूजा के बाद उत्सव का रंग और भी गहरा हो जाता है। आदिवासी समुदाय के लोग रंग-बिरंगे पारंपरिक वस्त्र पहनते हैं और गांव के अखड़ा में सामूहिक नृत्य करते हैं। महिलाएं और पुरुष साल के फूलों से स्वयं को सजाते हैं और पारंपरिक वाद्ययंत्रों की धुन पर नृत्य-गीत का आनंद लेते हैं। इस दौरान चावल से बने पारंपरिक पेय 'हांडिया' का सेवन भी किया जाता है। दरअसल, सरहुल केवल एक पर्व नहीं, बल्कि प्रकृति के प्रति सम्मान, सामूहिकता की भावना और आदिवासी सांस्कृतिक परंपराओं को जीवित रखने का प्रतीक है। यही कारण है कि झारखंड में यह त्योहार पूरे उल्लास और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है।

## केवल देखने तक सीमित नहीं कला का अनुभव

संग्रहालय ने विशेष रूप से तैयार की गई स्पर्शनीय (टैक्टाइल) प्रतिकृतियां विकसित की हैं, जिनकी सहायता से दृष्टिहीन आंगतुक चित्रों की संरचना और आकृतियों को हाथों से महसूस कर सकते हैं। इन प्रतिकृतियों में चित्र की मुख्य रेखाओं, बनावट और रूपों को उभरे हुए रूप में तैयार किया गया है, जिसे दर्शक स्पर्श के माध्यम से यह समझ सकें कि चित्र में कौन-कौन से तत्व मौजूद हैं और उनका आपसी संबंध क्या है। इसके साथ ही संग्रहालय में ऑडियो गाइड और विशेष वर्णनात्मक व्याख्याएं भी उपलब्ध कराई जाती हैं। इन विवरणों में चित्रों के रंगों, प्रकाश, भावनाओं और संरचना का विस्तार से वर्णन किया जाता है, ताकि दृष्टिबाधित दर्शक भी कल्पना के माध्यम से चित्र की दुनिया में प्रवेश कर सकें। उदाहरण के लिए, वान गॉग की प्रसिद्ध कृतियों में दिखाई देने वाले तीव्र रंगों, गतिशील ब्रश स्ट्रोक और प्रकृति के जीवंत दृश्यों को शब्दों के माध्यम से इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि श्रोता उनके भावात्मक प्रभाव को महसूस कर सकें। इसके अतिरिक्त संग्रहालय समय-समय पर विशेष समावेशी कार्यक्रमों और मार्गदर्शित भ्रमण भी आयोजित करता है, जिनमें प्रशिक्षित विशेषज्ञ आंगतुकों को कला के अनुभव से जोड़ते हैं। इन कार्यक्रमों का उद्देश्य यह दिखाना है कि कला केवल आंखों से देखने की वस्तु नहीं है, बल्कि उसे स्पर्श, ध्वनि और कल्पना के माध्यम से भी महसूस किया जा सकता है। इस पहल के पीछे एक व्यापक विचार यह है कि संग्रहालय केवल वस्तुओं को प्रदर्शित करने का स्थान न होकर समाज के सभी वर्गों के लिए खुला सांस्कृतिक मंच बने। वान गॉग म्यूजियम की यह पहल दुनियाभर के



संग्रहालयों के लिए एक प्रेरणादायक उदाहरण है। यह दिखाती है कि यदि रचनात्मक सोच और संवेदनशील दृष्टिकोण अपनाया जाए, तो कला का अनुभव हर व्यक्ति तक पहुंचाया जा सकता है- चाहे वह देख सकता हो या नहीं। इस प्रकार यह संग्रहालय न केवल महान कलाकार वान गॉग की कला को संरक्षित कर रहा है, बल्कि यह भी साबित कर रहा है कि कला की दुनिया वास्तव में सबके लिए है यानी उनके लिए भी जो देखने में सक्षम नहीं हैं। वैसे दृष्टिबाधित व्यक्तियों के लिए चित्रकला को सुलभ बनाने का प्रयास केवल हाल के वर्षों की पहल नहीं है। दुनिया के कई संग्रहालयों और कला संस्थानों ने लंबे समय से ऐसे प्रयोग किए हैं, जिनके माध्यम से दृष्टिबाधित दर्शक भी कला का अनुभव कर सकें। आज वान गॉग म्यूजियम द्वारा किए जा रहे प्रयास इसी व्यापक परंपरा की एक महत्वपूर्ण कड़ी हैं।

दरअसल 20 वीं सदी के उत्तरार्ध में यूरोप और अमेरिका के कई संग्रहालयों ने 'टैक्टाइल आर्ट' यानी स्पर्श आधारित कला अनुभव की अवधारणा पर काम करना शुरू किया। लंदन के टेट गैलरी में 1980 के दशक में ऐसी प्रदर्शनियां आयोजित की गईं, जिनमें दर्शकों को मूर्तियों को छूकर समझने की अनुमति दी गई। इन प्रदर्शनों का उद्देश्य यह बताना था कि कला का अनुभव केवल देखने तक सीमित नहीं है, उसे स्पर्श और कल्पना के माध्यम से भी समझा जा सकता है। इसी प्रकार भारत में भी संग्रहालयों ने इस दिशा में महत्वपूर्ण पहल की है। राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में 'अनुभव: ए टैक्टाइल एक्सपेरियंस' नामक विशेष गैलरी बनाई गई है, जहां प्राचीन मूर्तियों और कलाकृतियों की स्पर्शनीय प्रतिकृतियां रखी गई हैं। इन प्रतिकृतियों के साथ ब्रेल लिपि में जानकारी और ऑडियो विवरण भी उपलब्ध कराया गया है, जिससे दृष्टिबाधित दर्शक कला को बेहतर ढंग से समझ सकें। आजकल नई तकनीकों के माध्यम से चित्रों और मूर्तियों को 3-डी टैक्टाइल मॉडल में बदलने के प्रयोग भी किए जा रहे हैं। इन मॉडलों में चित्र की रेखाओं और आकृतियों को उभरे हुए रूप में बनाया जाता है, ताकि दर्शक उन्हें हाथों के स्पर्श से महसूस कर सकें। वास्तव में इन सभी प्रयासों का मूल उद्देश्य यह है कि संग्रहालय और कला संस्थान समाज के हर वर्ग के लिए उपयोगी साबित हों। जाहिर है कि इस प्रकार की पहल का मुख्य उद्देश्य यह साबित करना है कि कला केवल आंखों से देखने की वस्तु नहीं, बल्कि संवेदनाओं और तनुओं की एक व्यापक दुनिया है, जिसे हर व्यक्ति अपने तरीके से महसूस कर सकता है।